भाद्र शुक्ल ३, बुधवार, दिनांक - ०९-०९-१९६४
श्रावकाचार, गाथा - ४३ से ६२, प्रवचन-१७

पद्मनन्दि पंचविंशति का छठवाँ अधिकार है। श्रावक का आचार और आचरण क्या होता है, गृहस्थाश्रम में रहा हुआ जैन श्रावक, उसका अनुष्ठान, आचरण कैसा होता है, किस भूमिका में कितना उसका राग मन्द होता है, यह बात यहाँ चलती है। पहले से बहुत बात चल गयी। अब तो ४५ गाथा हो गयी। अब भावना की बात करती हैं।

धर्मी जीव संसार में बारह प्रकार की भावना करे। पहली भावना एक आ गयी। हमेशा ज्ञानी गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी, यह सब शरीर आदि अनित्य है और इनके नाश से शोक करनेयोग्य नहीं है, ऐसा बारम्बार विचारना करते हुए उसकी भूमिका में सम्यग्दर्शन सहित वैराग्यपना टिका रहे। कहो, समझ में आया? यह बात की पहले। अब दूसरी अशरण भावना है।

गाथा ४६

व्याघ्रेणाघ्रतकायस्य मृगशावस्य निर्जने।
यथा न शरणं जन्तोः संसारे न तथापदि।।४६।।

अर्थ : जिस मृग के बच्चे का शरीर व्याघ्र ने प्रबल रीति से पकड़ लिया है, ऐसे मृग के बच्चे को जिस प्रकार निर्जन वन में कोई बचाने के लिए समर्थ नहीं है। उसी प्रकार इस संसार में आपत्ति के आने पर जीव को भी कोई इन्द्र-अहमिन्द्र आदि नहीं बचा सकते इसलिए भव्य जीवों को, सिवाय धर्म के किसी को भी रक्षक नहीं समझना चाहिए॥४६॥

गाथा - ४६ पर प्रवचन

व्याघ्रेणाघ्रतकायस्य मृगशावस्य निर्जने।
यथा न शरणं जन्तोः संसारे न तथापदि।।४६।।

जिस मृग के बच्चे का शरीर व्याघ्र ने प्रबल रीति से पकड़ लिया है,... मृग के बच्चे को बाघ की थाप से ऐसा पकड़ा हो, उस **मृग के बच्चे को जिस प्रकार निर्जन वन में...** कोई मनुष्य का पदचिह्न नहीं, कोई मनुष्य आदि नहीं। **कोई बचाने के लिये समर्थ नहीं है।** इसी प्रकार संसार में **आपत्ति के आने पर जीव को भी कोई इन्द्र-अहमिन्द्र आदि नहीं बचा सकते...** करे? पैसा-बैसा कुछ करे या नहीं? यह भाई करते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : .... दया का उपदेश...

पूज्य गुरुदेवश्री : दया का उपदेश कौन करे? किसकी दया करे? कौन करे? यह तो उसका राग मन्द करने के लिये दया का उपदेश होता है।

जैसे मृग के बच्चे को बाघ ने पकड़कर ऐसे थाप मारकर पड़ा हो। आता है न सामने? यह रहा, देखो! सामने। भगवान महावीर परमात्मा का जीव दसवें भव में सिंह था, सिंह। है न सामने? देखो! सिंह। घड़ी के सामने ऊपर। वह सिंह ऐसे मृग को थाप मारता था। ऐसे मारकर खाता था। उसमें दो मुनि ऊपर से उतरे। दसवें भव में। भगवान महावीर का पूर्व का दसवाँ भव। ऐसे मृग को मारकर ऐसे... (खाता है)। मुनि ऊपर से उतरते हैं। अरे! आत्मा! हमने भगवान के निकट सुना है। मुनि कहते हैं, हमने त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा के निकट सुना है। तेरा आत्मा दसवें भव में भगवान महावीर होनेवाला है। सेठी! देखो! ऊपर है। देखो! दो मुनि उपदेश देते हैं और सिंह ऐसे मुँह फाड़कर देखता है।

हे आत्मा! तू तो भविष्य का दसवें भव में चौबीसवाँ अन्तिम तीर्थंकर ऐसा भगवान महावीर का तू जीव है। शोभालालभाई! सिंह को कहते हैं, देखो! ऐसे हाथ लम्बा करके। इस मृग के बच्चे को ऐसे थाप मारकर खाता है, यह क्या है तुझे? है कोई मृग को शरण वहाँ? समझ में आया? यह तो उस उपदेश के योग्य (होने से) अन्दर से आँख में से आँसू बहते जाते हैं। देखो! उसमें से नजदीक में से देखो तो आँख में से आँसू बहते जाते हैं। अरे! यह क्या किया? कहाँ का मैं आत्मा! कहाँ मेरी स्थिति होनेवाली! और इस स्थिति में मैं जंगल में इस अशरण-निर्जन वन में अशरण मृग को मारता हूँ! रोता है। सिंह, सिंह रोवे, वन का सिंह / बाघ—राजा। अरे! कोई इसे शरण

नहीं। मैंने इसे मारा। मेरा आत्मा मुनियों की कृपा ऊपर से उतरकर... देखो न! मुनि चले जाते थे। नीचे उतरे और ऐसा उपदेश करते हैं। भाई! तू आत्मा। चौबीसवाँ तीन लोक का नाथ तीर्थंकर होनेवाला। समझ में आया? संथारा कर लेता है। समाधिमरण (कर लेता है)।

यहाँ कहते हैं कि उस मृग को निर्जन वन में पकड़े (तो) कौन शरण है? उसी प्रकार यह सब निर्जन ही है, हों! जहाँ पड़ा वहाँ खाटले पड़ा और आपदा आकर पड़ी। कौन छुड़ाने में समर्थ है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी उपादान की तैयारी होवे तो निमित्त आये बिना नहीं रहता। उसे पराधीन नहीं कोई निमित्त। उसकी अन्दर उपादान की योग्यता थी। ऐसे ऊपर से (आते हैं)। चाहे जहाँ से आवे।

यहाँ तो मृग के बच्चे को कोई बचाने में समर्थ नहीं है। ऐसा समकिती गृहस्थाश्रम का श्रावक अपने आचार में ऐसी भावना बारम्बार करता है कि यह कोई कुटुम्ब-कबीला पीड़ा के अवसर में सामने नहीं देखता। सामने देखे तो भी वह शरण क्या करे? क्या दे सके? ऐसा करके विचारकर एक धर्म ही शरण है। **'यथा न शरणं जन्तोः संसारे न तथापदि'** भगवान 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' है न? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने आत्मा का धर्म कहा है, वह एक ही धर्म है। इसके अतिरिक्त कोई शरण नहीं है, ऐसा वह बारम्बार विचार करता है।

श्रीमद् में आती है न बारह भावना।

सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जानी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी।

अनाथ एकान्त सनाथ होगा...

सोलह वर्ष में (लिखते हैं)। राजमलजी! यह कितने वर्ष की उम्र में (कहते हैं)? सोलह वर्ष और चार महीने की उम्र में। श्रीमद् राजचन्द्र को पूर्व का जातिस्मरण था और वे स्वयं भावना लिखते हैं। बारह भावना का ग्रन्थ। समझ में आया? उसमें कहते हैं कि 'सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जानी...' सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा ने

अन्तर में आत्मा आनन्द और शुद्ध है, ऐसे तत्त्व को कहा है। यह आगे कहेंगे, इस गाथा में देखो! इसमें अन्तिम बात में बहुत सरस बात की है। यह भावना है न यह तो अभी। उसकी गाथा है, देखो!

६०वीं गाथा है। इसकी ६०वीं।

अन्तस्तत्त्वं विशुद्धात्मा बहिस्तत्त्वं दयाङ्गिषु।
द्वयोः सन्मीलने मोक्षस्तस्माद् द्वितयमाश्रयेत्।।६०।।

६०-६० गाथा। कहते हैं, सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा संसार में रहा हुआ श्रावक ऐसा विचार करता है कि अन्तःतत्त्व शुद्ध आत्मा। यह शरण। मेरा विशुद्ध चिदानन्द प्रभु, वह मेरा अन्तःतत्त्व है। वह मेरा माल है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! मेरा माल। माल समझते हो न? पूँजी। मेरी पूँजी अन्दर में सच्चिदानन्दस्वरूप है। मेरा कारण प्रभु, मेरा कारण जीव, उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द चतुष्टय से भरपूर तत्त्व है। वह मेरा अन्तःतत्त्व है। ऐसे अन्तःतत्त्व का आश्रय करके।

'**अन्तस्तत्त्वं विशुद्धात्मा**' देखो! मेरा अन्तःतत्त्व तो मुझे शरणभूत आश्रय करने योग्य, जिसकी शरण में जाने से धर्म और शान्ति प्राप्त हो, ऐसा मेरा आत्मा अनन्त सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार, वह मेरा अन्तःतत्त्व है। '**बहिस्तत्त्वं दयाङ्गिषु**' यहाँ तो श्रावक के बारह व्रत में दया का, अहिंसा का भाव मुख्य गिना है न? बारह व्रत में अहिंसा का भाव व्रत में मुख्य गिना है। ऐसा जो शुभभाव; अन्तःतत्त्व निश्चय स्वभाव का आश्रय और उसके साथ व्रत का शुभभाव, ऐसे दो निमित्त गिनकर '**द्वयोः सन्मीलने मोक्ष**' दोनों इकट्ठे होने पर आत्मा को मुक्ति होती है। ऐसा श्रावक समकिती गृहस्थाश्रम में बारम्बार दिन-प्रतिदिन ऐसी भावना और विचारणा करता है। कहो, समझ में आया?

'**मोक्षस्तस्माद् द्वितयमाश्रयेत्**' यह दो प्रकार के आश्रय करने की बात है। व्यवहार-निश्चय दोनों की बात है न? ज्ञान चिदानन्द प्रभु का अवलम्बन अन्तर आश्रय करना और व्रत के योग्य जो बारह व्रत आदि हैं, और उसमें दया का, अहिंसा का भाव, ऐसा शुभभाव उसे निमित्तरूप होते हैं। दोनों का आश्रय करना कि जिससे रागादि टलकर

शुद्धता की पूरी धारा बहकर आत्मा की मोक्षदशा हो। ऐसा बारम्बार, इस गृहस्थाश्रम में धर्मी बारम्बार ऐसी भावना का विचार करता है। कहो, समझ में आया? इसलिए यहाँ कहते हैं कि अशरण है। इस जगत में दूसरा कोई शरण नहीं है।

संसार भावना।

गाथा ४७

यत्सुखं तत्सुखाभासं यदुःखं तत्सदाञ्जसा।
भवे लोकाः सुख सत्यं मोक्ष एव स साध्यताम्।।४७।।

अर्थ : हे जीव! संसार में जो सुख मालूम होता है, वह सुख नहीं है; सुखाभास है अर्थात् सुख के समान मालूम पड़ता है और जो दुःख है, सो सत्य है किन्तु वास्तविक सुख मोक्ष में ही है, इसलिए तुझे मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए।।४७।।

गाथा - ४७ पर प्रवचन

यत्सुखं तत्सुखाभासं यदुःखं तत्सदाञ्जसा।
भवे लोकाः सुख सत्यं मोक्ष एव स साध्यताम्।।४७।।

संसार में सुख जो मालूम होता है, वह सुख नहीं है। वह सुख नहीं है। कहो, सेठ! यह बँगले पाँच लाख के, दस लाख के, धूल लाख के इसमें कुछ सुख नहीं है। धूल में भी सुख नहीं है। ...भाई! सत्य होगा यह? होगा। कहते हैं, जगत में-संसार में सुख मालूम पड़े, वह सुख नहीं, सुखाभास है। सुखाभास अर्थात् सुख का खोटा लिबास है।

मुमुक्षु : .... ठगा जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें ठगा जाता है। स्त्री में सुख है, पैसे में सुख है। मर जाता है, बापू! भाई! उसमें सुख नहीं है। साहूकार का वेश पहनकर चोर आवे, साहूकार का वेश पहनकर चोर आवे, ठगा जाए कि यह तो सेठ है। हमारे यहाँ आया था एक।

समयसार ले गया। रुपया दे गया चार-पाँच हजार लिखकर पत्र में। देना कहाँ था ? ऐसा लिबास। मुम्बई का एक व्यक्ति था परन्तु ठग-ठग, हों!

ऐसा कहते हैं कि जगत के प्राणी जगत की बाहर की अनुकूलता में सुख में ठगाये हैं। धर्मी जीव ऐसा मानता है कि पर में कहीं सुख है नहीं। सुख तो मेरे आत्मा में शान्ति और आनन्द मुझमें है। अन्तर नजर करने से शान्ति मिले ऐसा है। अन्यत्र कहीं शान्ति है नहीं। **'भवे लोका: सुख सत्यं' दु:ख है सो सत्य है।** क्या कहा ? और दु:ख, वह सत्य है। क्या कहा ? संसार की अनुकूलता में सुख मानना, वह खोटा सुखाभास है। दु:ख, वह सच्ची बात है। दु:ख, वह सच्ची बात है। चौरासी के अवतार में स्वर्ग और नरक तथा यह बाहर के साधन कहीं पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, कीर्ति ऐसे खम्मा-खम्मा होती हो, लो! निवृत्ति भी न मिले अच्छी भावना करने को। कहते हैं कि अकेला दु:ख ही है। ऐसा ज्ञानी बारम्बार विचारता है।

किसमें सुख है ? **'मोक्ष एव'** एक पूर्णानन्द की प्राप्ति करना, उसका प्रयत्न करना, उसमें सुख है और **'साध्यताम्'** उसके लिये प्रयत्न करना चाहिए। यह देखो! गृहस्थाश्रम में संसार की ऐसी भावना धर्मी बारम्बार भाता है। माता (होवे), वह स्त्री होती है, स्त्री मरकर माँ होती है, दुश्मन मरकर घर में पुत्र होता है, पुत्र मरकर दूसरे भव में दुश्मन होता है। यह संसार की घटना। समझ में आया ? ऐसी विचारणा करके धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में श्रावक को अपनी मुक्ति हो, ऐसा उसे प्रयत्न करना चाहिए। जिसमें से मुक्ति मिले और बन्धन छूटे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। बन्धन हो, ऐसा प्रयत्न उसे छोड़ देना चाहिए। ऐसा कहते हैं।

एकत्व भावना। चौथी।

गाथा ४८

स्वजनो वा परो वापि नो कश्चित्परमार्थत:।
केवलं स्वार्जितं कर्म जीवेनैकेन भुज्यते।।४८।।

अर्थ : यदि निश्चयरीति से देखा जावे तो संसार में जीव का न तो कोई स्वजन

है और न कोई परजन ही है तथा यह जीव अपने किये हुए कर्म के फल को अकेला ही भोगता है॥४८॥

गाथा - ४८ पर प्रवचन

स्वजनो वा परो वापि नो कश्चित्परमार्थतः।
केवलं स्वार्जितं कर्म जीवेनैकेन भुज्यते।।४८।।

एकत्व भावना। श्रावक घर में विचार करता है, अरे! मैं अकेला हूँ। **निश्चय रीति से देखा जाए तो संसार में जीव का न तो कोई स्वजन है और न कोई परजन है।** समझ में आया? **अपने किये हुए कर्म के फल को अकेला भोगता है।** अकेला कर्म भोगे खाट पर पड़ा हुआ पीड़ा-पीड़ा। हाय.. हाय।

मुमुक्षु : अकेला?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला भोगता है। एक बार कहा था न? एक लड़की को वह हुआ। क्या कहलाता है? शीतला। शीतला माता नहीं होती? शीतला पीला। फिर छिद्र-छिद्र में कीड़े पड़े, हों! युवा महिला ताजा विवाहित और उसमें चमड़ी में दाने-दाने सड़ गयी। ईयल (पड़ी)। रजाई में ऐसे घूमे तो यहाँ कीड़ों के ढ़ेर। ईयल समझते हो? बारीक कीड़े। ऐसे घूमे तो सफेद-सफेद कीड़े। माँ! ऐसे पाप मैंने इस भव में नहीं किये। ऐसा बोलती है। माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये। अरे! कहाँ के पाप? शरीर में दाने-दाने में जीव-कीड़े। छोटे सफेद कीड़े होते हैं न। ऐसे घूमे तो यहाँ ढ़ेर, ऐसे घूमे तो यहाँ ढ़ेर। ढ़ेर सारे सैकड़ों। महिला मर गयी। कौन शरण? सब पैसे खर्च करे या डॉक्टर दवा (दे), धूल में भी शरण नहीं। अकेली पीड़ा भोगे। आहाहा!

'स्वार्जितं कर्म' अपने किये हुए कर्मों से वहाँ अकेला दुःखी होता है परन्तु कोई इसे शरण नहीं है। ऐसी एकत्व भावना धर्मात्मा भाता है।

अन्यत्व (भावना)।

गाथा ४९

क्षीरनीरवदेकत्र स्थितयोर्देहदेहिनो।
भेदो यदि ततोऽन्येषु कलत्रादिषु का कथा।।४९।।

अर्थ : शरीर और आत्मा की स्थिति दूध तथा जल के समान मिली हुई है। यदि ये दोनों भी परस्पर में भिन्न हैं तो सर्वथा भिन्न स्त्री, पुत्र आदि तो अवश्य ही भिन्न हैं; इसलिए विद्वानों को शरीर, स्त्री, पुत्र आदि को अपना कदापि नहीं मानना चाहिए।।४९।।

गाथा - ४९ पर प्रवचन

क्षीरनीरवदेकत्र स्थितयोर्देहदेहिनो।
भेदो यदि ततोऽन्येषु कलत्रादिषु का कथा।।४९।।

क्या कहते हैं आचार्य? अरे! धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में बारम्बार ऐसी विचारणा और भावना करता है। शरीर और आत्मा दूध और पानी की भाँति इकट्ठे रहे, वे भी पृथक् हैं। यहाँ इकट्ठे रहे (है, जैसे) पानी और दूध इकट्ठा (रहता है), उसी प्रकार यहाँ रजकण मिट्टी के और भगवान अरूपी आनन्दघन एक जगह रहे होने पर भी भिन्न हैं, तो फिर स्त्री, पुत्र और मकान तो कहीं पृथक् रह गये। है? **'भेदो यदि ततोऽन्येषु कलत्रादिषु का कथा'** तो भिन्न स्त्री, पुत्र, मकान आदि की तो क्या बात करना?

आत्मा के ज्ञानानन्द की श्रद्धासहित... यहाँ समकिती की बात है न। मेरा आनन्द मुझमें है। मेरा धर्म मेरे अन्तर की शरण में है। कहीं धर्म है नहीं। ऐसी दृष्टि हुई, वह ऐसा विचारता है, अरे! नजदीक में रही हुई देह भी आत्मा से भिन्न है तो दूर (क्षेत्र में स्थित) पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब और मकान तो कहीं पृथक् हैं। वे मुझसे अन्य हैं, अलग है, मुझे और उन्हें कुछ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? इस प्रकार धर्मी बारम्बार आत्मा के हित के लिये ऐसी भावना करता है। यह पाँचवीं भावना।

छठमी, अशुचित्वभावना। देखो! यह बारह भावना आचार्य महाराज कहते हैं, गृहस्थाश्रम में हमेशा भावे। पैसे की भावना करते हैं या नहीं? इतना ब्याज आया,

इतने पैसे मिले, इतनी दुकान में इतने व्यक्ति रखे, इतनी वृद्धि हुई। यह सब पाप की वृद्धि, धूल की वृद्धि हुई। पाप की और धूल की। भले बाहर की धूल मिली हो। कहते हैं, अहो!

गाथा ५०

तथाशुचिरयं कायः कृमिधातुमलान्वितः।
यथा तस्यैव संपर्कादन्यत्राप्यपवित्रता।।५०।।

अर्थ : कीड़ा, धातु, मल, मूत्र आदि अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ यह शरीर इतना अपवित्र है कि उसके सम्बन्ध से दूसरी वस्तु भी अपवित्र हो जाती है।।५०।।

गाथा - ५० पर प्रवचन

तथाशुचिरयं कायः कृमिधातुमलान्वितः।
यथा तस्यैव संपर्कादन्यत्राप्यपवित्रता।।५०।।

५०वीं गाथा। अहो! यह शरीर पीड़ा, धातु **मल, मूत्र आदि अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ है।** यह शरीर कोई ऐसी चीज़ जगत में नहीं कि मक्खन और घी और मैसूरपाक को विष्टा बनावे। एक यह मशीन ऐसी है कि यह मक्खन को, घी को, मैसूरपाक को विष्टा बनाती है। अमरचन्दभाई! यह कहते हैं, देखो! **पीड़ा, धातु, मलादि अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ है। यह शरीर इतना अपवित्र है, उसके सम्बन्ध से...** देखो! इसके सम्बन्ध में आयी हुई **दूसरी वस्तु भी अपवित्र हो जाती हैं।** है? चार सेर घी पिलाया हुआ मैसूरपाक। मैसुख कहते हैं न मैसुख? ऊँची (मिठाई) नहीं (बनाते)? एक सेर आटे को चार सेर घी पिलाते हैं परन्तु विष्टा बनानी हो तो यह शरीर एक साधन है। आहाहा! यह खोपरापाक। कैसा था? सेठ के तुम्हारे यहाँ क्या था? जम्बुडा। जाम्बु-जाम्बु।गुलाब जामुन। यह घारी, और पूडी और यह बर्फी। कहते हैं कि चमड़ी के उसमें डाल दे तो सड़ेगी और विष्ठा नहीं होगी आठ घण्टे में। इस शरीर की थैली में डालेगा

तो आठ घण्टे विष्टा (होगी)। शोभालालभाई! लाओ दूसरी मशीन, लाओ दूसरी कोई भी मशीन ऐसी हो...

इसी प्रकार आचार्य महाराज कहते हैं। देखो! **विष्टा, मूत्र, कफ आदि अपवित्र वस्तु की उत्पत्ति शरीर से होती है।** भावार्थ में लिखा है। विष्टा आदि की उत्पत्ति, पेशाब की (उत्पत्ति)... पानी में डालो अन्यत्र पानी पेशाब होगा तुरन्त? मौसम्बी डालो अन्यत्र तुरन्त पेशाब होगा? यहाँ मौसम्बी और पानी डाला इकट्ठा, वहाँ दो-चार घण्टे में पेशाब। बहुत पीया होवे तो पाव घण्टे में भी हो जाए। आहाहा! देखो! यहाँ पाठ है, हों! **'तस्यैव संपर्कादन्यत्राप्यपवित्रता'** दूसरे किसी पदार्थ इसके साथ सम्पर्क करने से अपवित्र नहीं होता। तुरन्त नहीं बिगड़ता। देर लगेगी। यहाँ तो आठ घण्टे में तुम्हारे मैसूर और यह सब जामुन, क्या कहलाता है वह? गुलाबजामुन। वह वहाँ सवेरे विष्टा हो गयी। ऐसी यह मशीन है। आहाहा! ऐसा यह शरीर अशुचि से भरपूर है। ऐसा बारम्बार धर्मात्मा गृहस्थाश्रम में ऐसी विचारणा और भावना करता है। कहो, समझ में आया? यह ऐसी चीज़। आहाहा! ऐसे मीठे-मीठे दूधपाक और पूड़ी और ऐसा खाजा और मीठा खाजा। क्या कहें अपने कहते हैं न क्या? साटा-साट। हमारे साटा कहलाता है। शक्कर में सराबोर किया हुआ। खाजा होता है न? साटा। विवाह में बहुत देते हैं बनियों में। उसकी विष्टा करनी हो तो यह एक मशीन है। दूसरे में डालेगा तो विष्टा तुरन्त नहीं होगी।

जिसके संग से पसीना हो, जिसके संग से पेशाब हो, जिसके संग से कफ हो, जिसके संग से विष्टा हो, अरे! ऐसा शरीर! यह अशुचि, यह मेरी चीज़ नहीं है। मुझमें तो शुचि पवित्रता पड़ी है। वह कहाँ अशुचि और मैं कहाँ पवित्र। मुझे और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। ऐसा गृहस्थाश्रम में रहे हुए उस श्रावक का आचार है कि बारम्बार ऐसी विचारणा और भावना करे।

आस्रव भावना। सातवीं भावना।

गाथा ५१

जीवपोतो भवाम्भोधौ मिथ्यात्वादिकरन्ध्रवान्।
आस्रवति विनाशार्थं कर्माभाम्भः सुचिरं भ्रमात्।।५१।।

अर्थ : इस संसाररूपी समुद्र में जिस समय यह जीवरूपी जहाज मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योगरूप, छिद्रों से सहित होता है, उस समय यह अपने विनाश के लिए अज्ञानता से प्रचुर कर्मरूपी जल को आस्त्रवरूप करता है॥५१॥

गाथा - ५१ पर प्रवचन

जीवपोतो भवाम्भोधौ मिथ्यात्वादिकरन्ध्रवान्।
आस्रवति विनाशार्थं कर्माभाम्भः सुचिरं भ्रमात्।।५१।।

अहो! **संसाररूपी समुद्र में...** आस्त्रव भावना। धर्मी जीव भावना करता है। राजा-महाराजा हो, समकिती चक्रवर्ती हो, वह भी बारम्बार यह (भावना भाता है)। तीर्थंकर थे—शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ—ये तीर्थंकर थे। आठ वर्ष की उम्र में पंचम गुणस्थान धारण किया हुआ था। वे बारम्बार संसार में यह भावना करते थे। जिन्हें तीन तो पदवियाँ थीं—तीर्थंकर की, चक्रवर्ती की और कामदेव की। किसे? सोलवें शान्तिनाथ। जिनका रूप छह खण्ड में किसी का नहीं था। अरनाथ, कुन्थुनाथ, ऐसा रूप वह कामदेव। चक्रवर्ती छह खण्ड के स्वामी। दूसरा कोई छत्रपति नहीं और तीर्थंकर। इन्द्र जिनके दास। ऊपर के इन्द्र जिनके तलुवे चाँटें। अन्नदाता! सिंहासन पर बैठे हों गृहस्थाश्रम में तथापि इन्द्र जिन्हें (नमन करता है)। बत्तीस लाख विमान का स्वामी। पहला सौधर्म देवलोक जिसके बत्तीस लाख विमान हैं। ईशान देवलोक में अट्ठाईस लाख विमान हैं। वे इन्द्र ऐसे खम्मा अन्नदाता! तीर्थंकरदेव महाराज अल्पकाल में आप परमात्मा होकर हमको उद्धार करनेवाले, उपदेश देनेवाले। इन्द्र जिनके मित्र। अर्थात् इन्द्र जिनके सेवक। आहाहा! वह भी ऐसी भावना भाता है।

ओहो! **संसाररूपी समुद्र में जिस समय जीवरूपी जहाज... 'पोतो'** है न?

'पोतो' जीवरूपी जहाज मिथ्यात्व, अविरती, प्रमाद, कषाय, योग छिद्रों से सहित होता है... छिद्र-छिद्र। जहाज में छिद्र होवे तो पानी घुस जाए, छिद्र पड़े होवें तो। इसी प्रकार आत्मा अखण्डानन्द आनन्द जल से भरपूर उसे यह संसार क्षार समुद्र में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद और कषाय के छिद्रों द्वारा आवरण आते हैं। आवरण आते हैं। इसलिए उन छिद्रों की विचारण इसे बारम्बार करना चाहिए। ज्ञानी को विपरीत मान्यता तो होती नहीं। यहाँ तो समुच्चय बात ली है। समझ में आया?

यह समय अपने विनाश के लिये अज्ञानता से प्रचुर कर्मरूपी जल को आस्रव करता है। क्या कहा? देखो! **'कर्माभाम्भः सुचिरं भ्रमात्'** अज्ञान के कारण से। अपने दोष के कारण छिद्र से कर्म आते हैं। उसके कारण से नहीं कि कर्म को आने का (था) इसलिए आते हैं, ऐसा नहीं। कर्म का आना **'सुचिरं भ्रमात्' अज्ञानरूपी प्रचुर कर्मरूपी जल का...** भान नहीं। अरे! मेरा स्वरूप अमृतानन्द। अमृतानन्द, जिसमें अकेले अतीन्द्रिय अमृत आनन्द भरा है, ऐसा जिसे भान नहीं। विपरीत श्रद्धा और अज्ञान द्वारा छिद्र करके, जैसे जहाज में पानी घुस जावे और जहाज को समुद्र में डुबो दे, उसी प्रकार अज्ञानी का जहाज इस मिथ्यात्व, अव्रत और कषाय के छिद्र द्वारा चौरासी के क्षार समुद्र में डूब जाता है। इसका कहीं पता नहीं लगता। ऐसा धर्मी जीव इस प्रकार से आस्रव की शुभाशुभ... देखो! आस्रव अर्थात् दोनों परिणाम, हों! शुभ और अशुभ। शुभ और अशुभ भाव दोनों छिद्र हैं। दोनों आस्रव हैं। वे मलिन परिणाम हैं। दोनों आवरण आने का कारण छिद्र है। ऐसा बारम्बार विचारकर उसे आत्मा की शरण लेना चाहिए।

संवर (भावना)।

गाथा ५२

कर्मास्रवनिरोधोऽत्र संवरो भवति ध्रुवम्।
साक्षोदेतदनुष्ठान मनोवाक्कायसंवृतिः।।५२।।

अर्थ : आये हुए कर्मों का जो रूक जाना है, वही निश्चय से संवर है तथा मन, वचन, काय का जो संवरण (स्वाधीन) करता है, यही संवर का आचरण है॥५२॥

गाथा - ५२ पर प्रवचन

कर्मास्रवनिरोधोऽत्र संवरो भवति ध्रुवम्।
साक्षोदेतदनुष्ठान मनोवाक्कायसंवृतिः।।५२।।

क्या कहते हैं? **आये हुए कर्मों का रुक जाना, वही निश्चय से संवर है।** कथन उपदेश की शैली... कुछ कर्म आते थे और रोके हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वर्णन शैली...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वर्णन पद्धति की पद्धति भावना में क्या करे? कर्म आनेवाले थे और इसने रोके हैं, ऐसा है नहीं। परन्तु अपने आत्मा के स्वभाव की, श्रद्धा और भावना करते हुए जो शुद्धता प्रगट हुई, उस काल में पहले आवरण आनेवाले थे, वे आये नहीं, उन्हें रोका—ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? बारम्बार संवर की भावना करना।

मन-वचन-काय ... स्वाधीन करना। देखो! जितना मन-वचन और काया के कम्पन में पराधीन होता है, उतना उसे पाप और पुण्य का आस्रव आता है। उसे अपने आत्मा में शुद्ध भगवान परमात्मा का पिण्ड प्रभु अनन्त गुण का धाम, उसमें रुककर संवर को करना चाहिए। मन-वचन-काया में जाते हुए परिणाम को रोकना। इसका नाम यहाँ संवर कहा जाता है। कहो, समझ में आया? ५२ (हुई), ५३ (गाथा)।

गाथा ५३

निर्जरा शातनं प्रोक्ता पूर्वोपार्जितकर्मणाम्:।
तपोभिर्बहुभिः सा स्याद्वैराग्याश्रित चेष्टितैः।।५३।।

अर्थ : पहिले संचित हुए कर्मों का जो एकदेशरूप से नाश होना है, वही निर्जरा है तथा वह निर्जरा संसार-देह आदि से वैराग्य करानेवाले अनशन, अवमोदर्यादि तप से होती है॥५३॥

गाथा - ५३ पर प्रवचन

निर्जरा शातनं प्रोक्ता पूर्वोपार्जितकर्मणाम्:।
तपोभिर्बहुभि: सा स्याद्वैराग्याश्रित चेष्टितै:।।५३।।

पहले संचित हुए कर्मों का एक देशरूप से नाश होना... एक अंश नाश होना, **उसका नाम निर्जरा कहते हैं।** सर्वथा कर्म का नाश होना, इसका नाम मुक्ति है। एक अंश कर्म का रुक जाना, स्वभाव की भावना द्वारा (रुक जाना), उसे यहाँ निर्जरा कहते हैं। कहो, निर्जरा की भावना बारम्बार विचारना चाहिए। ओहोहो! परन्तु इसमें निवृत्ति कहाँ...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं, भावना सुनने की मिली दो-चार वर्ष में। यह १७ में (संवत् २०१७) पढ़ा था। यह २०२० (संवत्) में वापस अधिक... भावना करनी। उस पाप की भावना की। लड़के को कैसे ठिकाने लगे और लड़के को कैसे नौकरी लगे, लड़का कैसे आगे बढ़े, कहाँ से अच्छी कन्या मिले और अधिक वेतन में कैसे चढ़े? अकेला पाप। उसकी भावना भाता है। पाँच-छह लड़के हों, वे कैसे ठिकाने पड़े और कैसे आगे बढ़े और कैसे दो हजार का वेतन हो। होली। तुझे क्या है परन्तु अब उसमें? तुझे तो अकेली पाप की भावना है। सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, घर छोड़कर बैठे तो यह हो। यह किसकी बात चलती है? गृहस्थाश्रम में रहे हुए श्रावक समकिती ऐसी भावना करते हैं। ठीक, सेठी ने कहा। यहाँ यह किसकी बात चलती है? पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थाश्रम में स्त्री, पुत्र, परिवार, राज्य में पड़े हों तो भी बारम्बार विचारते हैं कि ओहो! पूर्व में बाँधे हुए कर्मों का आत्मा के भान द्वारा एक अंश नाश करना, वह निर्जरा है।

संसार आदि वैराग्य करानेवाले अनशन, अवमौदर्य आदि तप से होती है। लो! राग की मन्दता, इच्छा का निरोध, स्वभाव की सावधानी के द्वारा एक अंश भी

अशुद्धता और कर्म का नाश होता है। यह गृहस्थाश्रम में रहे हुए की बात चलती है। ऐसा (करने जाएँ) तो इन महेन्द्रभाई को और सबको छोड़ देना पड़े। व्यापार, दुकान का धन्धा छोड़ देना पड़े।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अब अन्दर लार रहती है। कहाँ छोड़ा है अन्दर? लड़के का पत्र आवे। वह पिताजी! हमें याद करो, हों! ऐसा निष्ठुर नहीं हुआ जाता। ... और वापस। आप बारह-बारह महीने से वहाँ पड़े हो। हमारे घर में क्या होगा? हम आपके बच्चे कहलाते हैं। आप हमारे पितातुल्य हो। ... कहलाये। तुम्हारे बिना यहाँ हमें रुचता नहीं है।—ऐसा जहाँ पत्र आवे तो चल दे एकदम। यह पत्र आया है। हे आत्मा! उठा राग के ऊपर से बुद्धि और स्वभाव का शरण ले। शोभालालभाई! यह पत्र प्रतिनिधि, भगवान के प्रतिनिधि हैं। ये भगवान के प्रतिनिधि शास्त्र लेकर आये हैं। कहेंगे कहीं, इसमें होगा। समझ में आया?

'तपोभिर्बहुभिः सा स्यादैराग्याश्रित' ओहो! अकेला वैराग्य नहीं। अपना आत्मा ज्ञान और चैतन्य का दल है, ऐसी जिसने अस्ति में दृष्टि की है, उसे पर से नास्ति का वैराग्य सहज आता है। धर्मी जीव को पुण्य और पाप के दो परिणाम भी बन्ध के कारण हैं। ऐसा करके पुण्य और पाप के ऊपर से भी वैराग्य करता है। इसका नाम वैराग्य है। जिसे बाह्य से तो वैराग्य है परन्तु पुण्य और पाप दोनों विकल्प-राग उठते हैं, उससे विमुख होकर एकाकार हो, उसे भगवान वैराग्य कहते हैं। ऐसी वैराग्य भावना में निर्जरा होती है। समझ में आया? सवेरे का सूक्ष्म पड़े परन्तु यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं? ऐ... देवानुप्रिया! ५३ (हुई)।

५४ लोकानुप्रेक्षा का स्वरूप। दसवीं भावना। गृहस्थाश्रम में राजपाट में रहा हो, महारानियाँ हो, राजकुमार हो, वह भी भावना भाता है। ओहो! यह वस्तु भगवान ने वर्णन की है, ऐसी अनित्य-अशरण की भावना भगवान तीर्थंकर भी गृहस्थाश्रम में थे, तब करते थे। तो हमारे जैसे, जिनके पास इतना साधन भी नहीं। समझ में आया? दीपचन्दजी कहते हैं... दीपचन्दजी हुए हैं न? यह अनुभवप्रकाश के करनेवाले। अरे!

हमें समय मिलता नहीं। कहते हैं, ऐ.! पहले के राजाओं को चक्रवर्ती पद और महाइन्द्रपद आदि थे। यहाँ मनुष्य महाराजा बलदेव आदि थे, इतना तो तेरे पास नलिया भी नहीं है। नलिया समझते हो? यह नलिया होते हैं न मकान के ऊपर डालने के। जितनी ऋद्धि उनके पास थी, इतनी ऋद्धि तेरे पास नहीं है। तू तो उनके समक्ष भिखारी जैसा है। तुझे भावना का समय नहीं मिलता। रुचि नहीं, तुझे द्रव्यदृष्टि वस्तु की (रुचि नहीं)।

जिसके घर में ऐसे नव निधान। नव निधान। सोलह हजार देव ऐसी तैनाती में। दो हजार देव तो शरीर के अंगरक्षक। दो हजार, हों! ऐसे तैयार। खम्मा अन्नदाता को क्या हुआ? क्यों पसीना आया? क्यों खाँसी आयी? कहते हैं कि ऐसे साधनवाले भी प्रतिदिन निवृत्ति से भावना भावे और परिणाम का सुधार करते हैं। तुझे यहाँ कितनी ऋद्धि मिल गयी है? क्या कहें परन्तु निवृत्ति नहीं मिलती। व्यापार-धन्धा... आहाहा! और आज के कानून। धूल में भी कानून बाधक नहीं है, सुन न! मृत्यु के अवसर में कैसे निवृत्त होता है? सब आया है ऐसा तैयार।

एक व्यक्ति... कहा था न वहाँ (संवत्) १९९० के वर्ष में हम राजकोट थे। वे प्रेमचन्दभाई मन्दिरमार्गी थे। रावसाहेब की। कहीं गये होंगे विवाह में। खाई जलेबी और ऐसा। उसमें से उठा। दो डबल ओले। और मरने की तैयारी। रावसाहेब इलकाल आया है। उस समय। एक व्यक्ति पुलिस लेकर आया। मुझे बुलाते हैं। अन्तिम स्थिति थी और मांगलिक सुनाओ। बड़ा ... स्त्री। ऐ! परन्तु यह मरने पड़ा है और यह अभी क्या करते हो तुम? स्त्री ऊपर से पूछे। अब पूछने का काला मर जाएगा यहाँ से चला जाएगा। वहाँ आयी पुलिस। रावसाहेब का खिताब है। जाओ मरकर परलोक। भाई! मैं वहाँ था और पुलिस आयी। वहाँ मैं था। ऐसे मरने... मुझे देखकर आँख में आँसू बह गये थे। मरने की तैयारी। शरीर सुन्दर ऐसा का ऐसा। कुछ एकदम डबल निमोनिया था। कुछ सूखा शरीर नहीं, कुछ नहीं। व्याधि एक-दो दिन की व्याधि। और ऐसे पड़े हुए। क्या है? यह तैयारी हो गयी। अब इस परलोक के डालने के तम्बू हो गये। यह तम्बू टूटे। कब तक यह करना है तुम्हें? कहा, यह क्या ऊपर चढ़कर बैठे हो? वहाँ वह पुलिस आयी। राव साहेब का खिताब (लाया हूँ)। सेठ! वहाँ अब साथ ले गया होगा? धूल में भी नहीं, कहते हैं। क्या कहते हैं?

गाथा ५४

लोकः सर्वोऽपि सर्वत्र सापायस्थितिरध्रुवः।
दुःखकारीति कर्तव्या मोक्ष एव मतिः सताम्।।५४।।

अर्थ : यह समस्त लोक विनाशीक और अनित्य है तथा नाना प्रकार के दुःखों का करनेवाला है — ऐसा विचार कर उत्तम पुरुषों को सदा मोक्ष की ओर ही बुद्धि लगानी चाहिए॥५४॥

गाथा - ५४ पर प्रवचन

लोकः सर्वोऽपि सर्वत्र सापायस्थितिरध्रुवः।
दुःखकारीति कर्तव्या मोक्ष एव मतिः सताम्।।५४।।

देखो! गृहस्थाश्रम को कहते हैं। **समस्त लोक विनाशीक है।** पूरी दुनिया विनाशीक है। **अनित्य...** है। **'सापायस्थितिरध्रुवः'। नाना प्रकार के दुःखों का करनेवाला है।** दुनिया के साधन तो दुःख में निमित्त है। चारों ओर लाओ.. लाओ.. लाओ.. पुत्र कहे कि इतना लाओ... स्त्री कहे कि इतना लाओ... पुत्रियाँ कहे कि इतना लाओ। लाओ.. लाओ.. और लाओ.. लाओ.. लाओ.. और लाओ.. मर जाएगा परन्तु वह लाओ-लाओ में पड़ा है। पूरी दुनिया अनित्य और अध्रुव है। समझ में आया?

ऐसा विचार कर उत्तम पुरुषों को... 'मतिः सताम्' मोक्ष की ओर ही बुद्धि लगाना चाहिए। ऐसी लोक की भावना बारम्बार विचारणा करना चाहिए। पूरी दुनिया में कोई शरण नहीं है। पूरा लोक इन्द्र, नरेन्द्र, सब अशरणभूत अशरण है। ऐसे लोक का विचार करके अपने आत्मा में **'मतिः सताम्'** ऐसे उत्तम जीवों को आत्मा को जैसे बन्धन से छूटे, वैसा इन्हें प्रयत्न करना चाहिए। राग-द्वेष और अज्ञान से छूटे, वैसा इन्हें प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा अवसर अनन्त काल में मिलना मुश्किल है, इसलिए यह करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया?

५५ (गाथा)। ११वीं भावना।

गाथा ५५

रत्नत्रयपरिप्राप्तिर्बोधिः सातीव दुर्लभा।
लब्धा कथं कथंचिच्चेत् कार्यो यत्नो महानिह।।५५।।

अर्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रय की जो प्राप्ति है, उसी का नाम बोधि है और इस बोधि की प्राप्ति संसार में अत्यन्त कठिन है। यदि किसी रीति से उसकी प्राप्ति भी हो जावे तो उसकी रक्षा के लिए विद्वानों को प्रबल यत्न करना चाहिए॥५५॥

गाथा - ५५ पर प्रवचन

रत्नत्रयपरिप्राप्तिर्बोधिः सातीव दुर्लभा।
लब्धा कथं कथंचिच्चेत् कार्यो यत्नो महानिह।।५५।।

अहो! आचार्य महाराज ने वन में रहकर ताड़पत्र पर यह श्लोक रचे हैं। वे दुनिया को करुणाबुद्धि से कहते हैं कि भाई! यह **'रत्नत्रयपरिप्राप्तिर्बोधिः सातीव दुर्लभा'** भाई! यह आत्मा परमानन्द की मूर्ति, इसकी श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता महादुर्लभ है। कोई बाहर की चीज़ दुर्लभ नहीं है। समझ में आया? बाहर की चीज़ दुर्लभ नहीं है। वह तो अनन्त बार मिल चुकी है। देवलोक में इन्द्राणियाँ अनन्त बार मिली; नरक के दुःख अनन्त बार मिले। वह कोई दुर्लभ चीज़ नहीं है। ओहो! एकदम जहाँ पाँच-पचास लाख मिले, रखो लापसी का आंधण। लापसी-लापसी बनाते हैं न? कंसार। करते हैं या नहीं? क्या कहते हैं? हमारे तो कंसार कहते हैं। लापसी। रखो यह लापसी आज। आमदनी हुई है। धूल में भी आमदनी नहीं हुई। खोट गयी है, सुन न! पूर्व का पुण्य जल गया, तब पैसा दिखता है। तू कहता है कि मिला है। भगवान कहते हैं कि जला। तेरा पुण्य जल गया, तब यह मिला है। सुन न! समझ में आया? यह कहीं दुर्लभ चीज़ नहीं है।

'रत्नत्रयपरिप्राप्तिर्बोधिः' इन तीन की प्राप्ति का नाम बोधि है। यह बोधि अतीव दुर्लभ, अतीव दुर्लभ। ओहोहो! कहाँ एकेन्द्रिय के जीव, कहाँ निगोद के जीव, कहाँ

पड़े हैं ? अब उसमें से कब प्राणी त्रस हो और कब यह मनुष्य हो, उसमें कब जैन धर्म सुनने का मिले और सुनने के बाद इसे उसकी दृष्टि और रुचि में बैठे। ओहोहो ! समझ में आया ? जैन परमेश्वर ने कहा हुआ केवली पण्णंतो धम्मो शरणं, वह धर्म इसे कब मिले। जैसे सरोवर में ऊपर... क्या कहलाता है ? काई का गदेला बिछा, गदेला, नीचे कछुआ रहता हो, उसे खबर भी नहीं होती कि ऊपर चन्द्रमा है या नहीं ? समझ में आया ? उसमें किसी समय... गोदड़ा समझते हो ? लील-फुग / काई इतनी जम गयी हो, उसमें कोई हवा आयी और टूटा, ऐसे नजर पड़ी। ओहो ! यह क्या ! यह क्या ! कभी कुटुम्ब कहता नहीं था, ... कहता नहीं था। यह क्या ? वह जहाँ कहने गया उसके कुटुम्ब को, वहाँ वह इकट्ठा हो गया। थोड़ी देर तो खोटा बोला, बापू ! कुछ है। भाई ! हमने देखा है, वह खोटा नहीं है। समझ में आया ? इसी प्रकार अनन्त काल से आत्मा को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति चन्द्र के दर्शन की भाँति दुर्लभ है। समझ में आया इसमें ? और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ है। तथा उसमें स्वरूप की रमणतारूप चारित्र तो महादुर्लभ है। दुर्लभ से दुर्लभ। आहाहा !

कहते हैं कि **उसका बोधि है। इस बोधि की प्राप्ति संसार में अत्यन्त कठिन है। यदि किसी भी (प्रकार से) उसकी प्राप्ति हो जाए तो उसकी रक्षा के लिये विद्वानों को प्रयत्न करना चाहिए। 'यत्नो महानिह'** ऐसा शब्द है न ? महान प्रयत्न करना चाहिए। वह महान पुरुषार्थ से मिलती है। ऐसे का ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं मिलता। महान पुरुषार्थ। निराधार चिदानन्द निरालम्बी तत्त्व है। उसकी निरालम्बी परिणति करना, इसके बिना कोई प्राप्त हो, ऐसी बोधि है नहीं। आता है न ? नमोत्थुणं में आता है। बोहिदयाणं... नहीं आता ? अनन्त... सब लम्बा लिखा है। कहो, समझ में आया ?

५६ (गाथा)। अन्तिम भावना। धर्म भावना।

गाथा ५६

***निजधर्मोऽयमत्यन्तं दुर्लभो भविनां मतः।**
तथा ग्राह्यो यथा साक्षादामोक्षं सह गच्छति।।५६।।

अर्थ : संसार में प्राणियों को ज्ञानानन्दस्वरूप निजधर्म का पाना अत्यन्त कठिन है, इसलिए यह धर्म ऐसी रीति से ग्रहण करना चाहिए कि मोक्षपर्यन्त यह साथ ही बना रहे।।५६ ।।

गाथा - ५६ पर प्रवचन

निजधर्मोऽयमत्यन्तं दुर्लभो भविनां मतः।
तथा ग्राह्यो यथा साक्षादामोक्षं सह गच्छति।।५६।।

ओहो! **'निजधर्मोऽयमत्यन्तं दुर्लभो'** देखो! निजधर्म दुर्लभ, हों! पुण्यधर्म और पाप परिणाम, वे दुर्लभ नहीं। अनन्त बार मिल चुके हैं। नौवे ग्रैवेयक जाए ऐसे पुण्यभाव भी अनन्त बार किये हैं। वह कहीं निजधर्म नहीं है। आहा! **'निजधर्मोऽयमत्यन्तं दुर्लभो' संसारी प्राणियों को ज्ञानानन्द स्वरूप निजधर्म का पाना...** ज्ञानानन्दस्वरूप निजधर्म को प्राप्त (करना)। लो, यह धर्म। ओहोहो! समझ में आया? आत्मा ज्ञान और आनन्द का समुद्र / सागर, अमृत का भरपूर भण्डार है। ऐसी अन्तर में धर्म की दशा की प्राप्ति अति दुर्लभ है। धर्म की प्राप्ति महादुर्लभ है। परधर्म तो अनन्त बार किया। पुण्य और पाप के भाव किये। जगत में अनन्त बार भटका। परन्तु निज धर्म की प्राप्ति अत्यन्त-अत्यन्त दुर्लभ **'भविनां मतः'** समझ में आया?

'तथा ग्राह्यो यथा' क्या कहते हैं जरा? अरे! भाई! हे आत्मा! इस प्रकार से श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र आत्मा का महान धर्म ग्रहण कर, निज धर्म को इस प्रकार से ग्रहण कर कि **'यथा साक्षादामोक्षं सह गच्छति'** मोक्ष हो, तब तक साथ में रहे, इस

* पाठान्तर **'जिनधर्मो'** भी प्राप्त होता है। यहाँ गुरुदेवश्री ने निजधर्मो वाली गाथा एवं अर्थ पढ़ा है, इसलिए यह रखा गया है।

प्रकार से धर्म को ग्रहण कर। अप्रतिहतभाव से ग्रहण कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? (यह तो) बाबा होने की बात है। परन्तु बाबा ही है, सुन न! कहाँ घुस गयी तेरी चीज़ में कोई चीज़? सब बाहर की बाहर लौटती है। बाहर की बाहर घूमती है। अन्दर प्रवेश कहाँ किया है? भगवान आत्मा... देखो! आचार्य को सार लेना है तो अब (कहते हैं), **'निजधर्मोऽयमत्यन्तं दुर्लभो'** आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु ऐसा जो निज स्वभाव, उसे प्राप्त करना भव्य को महा-महा प्रयत्न से महा दुर्लभ है। परन्तु इस प्रकार से ग्रहण करना, **यह धर्म ऐसी रीति से ग्रहण करना चाहिए कि मोक्षपर्यन्त यह साथ ही बना रहे।** इस प्रकार संस्कार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के करना कि वह स्थिति मोक्ष तक रहे। फिर गिरे नहीं। आहाहा! देखो! आचार्य भी भावना कैसी (भाते हैं)!

गृहस्थाश्रम में भी कहते हैं कि ओहो! आत्मा ध्रुव अविनाशी तत्त्व आनन्द और ज्ञान का भरपूर भण्डार, उसे इस रीति से पकड़, इस रीति से श्रद्धा-ज्ञान में ले और ऐसे चारित्र के स्थिरता के संस्कार कर कि जो ग्रहण किया हुआ ठेठ मोक्ष तक आवे। कहो, सेठी! कहते हैं न? **'निजधर्मोऽयमत्यन्तं'** आत्मा सहज आनन्द (स्वरूप) राग और विकल्प से पार है, ऐसा जो निज स्वभाव का धर्म, जो मन-वाणी-देह से अत्यन्त भिन्न है और दया, दान तथा पुण्यभाव के विकल्प से भी अत्यन्त भिन्न है। ऐसे निज धर्म को ज्ञानानन्द को इस प्रकार से पकड़, ऐसी प्रतीति कर, ऐसा ज्ञान कर, ऐसे चारित्र के लीनता के संस्कार कर कि वे संस्कार मोक्ष तक साथ रहे। आहाहा! देखो! कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान हमारे स्थिर रहनेवाले और वहाँ से चारित्र पूरा करके मोक्ष जाऊँगा। यह श्रावक के लिये भी ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! यह प्राप्त हुआ बढ़ाने का इच्छुक होगा या प्राप्त हुआ गिराने का इच्छुक होगा? आहाहा! समझ में आया?

'तथा ग्राह्यो यथा साक्षादामोक्षं' जब तक केवलज्ञान और मुक्ति न हो, तब तक संस्कार जमे रहें, इस प्रकार से धर्म को ग्रहण करना। घड़ी भर ग्रहण करके हो दिया, ऐसा नहीं। एक बार सम्यग्दर्शन हुआ तो हो गया, लो! ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इस आत्मा को इस प्रकार से पकड़... ज्ञानानन्द चैतन्य ज्योत की दृष्टि में कि जो दृष्टि और ज्ञान और संस्कार ठेठ केवल (ज्ञान) प्राप्त करे, तब तक रहा करे।

बीच में उसे गिरने का भव और भय होता नहीं। ऐसी भावना गृहस्थाश्रम में रहे, गृहस्थ करे, ऐसा यहाँ आचार्य महाराज फरमा रहे हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

गाथा ५७

दुःखग्राहगणाकीर्णे संसारक्षारसागरे।
धर्मपोतं परं प्राहुस्तारणार्थं मनीषिणः।।५७।।

अर्थ : नाना प्रकार के दुःखरूपी नक्र-मकर से व्याप्त इस संसाररूपी खारी समुद्र से पार करनेवाला धर्मरूपी जहाज है — ऐसा गणधर आदि महापुरुष कहते हैं; इसलिए संसार से तरने की इच्छा करनेवाला भव्य जीवों को इस धर्मरूपी जहाज का आश्रय अवश्य लेना चाहिए॥५७॥

गाथा - ५७ पर प्रवचन

दुःखग्राहगणाकीर्णे संसारक्षारसागरे।
धर्मपोतं परं प्राहुस्तारणार्थं मनीषिणः।।५७।।

अहो! बारह भावना की विचारणा का योगफल लेते हैं। **अनेक प्रकार के दुःखरूपी ... मकर से व्याप्त...** समुद्र में जानवर होते हैं न जानवर? उसी प्रकार संसाररूपी महासमुद्र चौरासी के अवतार में पड़ा है। कैसा है वहाँ कि अनेक प्रकार के मगरमच्छ और मछलियाँ तथा महा बड़े सर्प (भरे हैं)। **'संसाररूपी खारे समुद्र से पार करनेवाला...** संसार... यह समुद्र खारा होता है न? उसमें मगरमच्छ और ऐसे लम्बे मोटे जीव होते हैं कि हाथी जैसे जानवर यदि गिरें तो भी पैर बाँध दें। सर्प जैसे बड़े जानवर होते हैं। निकल सके नहीं, चल सके नहीं, डूब जाए। ऐसा संसार खार समुद्र **पार करनेवाला धर्मरूपी जहाज है।** वह आत्मा का अरागी स्वभाव श्रद्धा-ज्ञान वह जहाज है।

विकाररूप संसार के परिभ्रमण का जो समुद्र, उसमें से तिरने के लिये भगवान आत्मा... ऐसा दृष्टि की नजर कर, ज्ञान में आत्मा को ज्ञेय बना कि जहाज संसार समुद्र

से पार को प्राप्त हो, ऐसा रास्ता पकड़। **'धर्मपोतं परं'** कहो, समझ में आया? **गणधर आदि महापुरुष कहते हैं।** ऐसा कहा, लो! **'प्राहु'** गणधर भगवान भी ऐसा फरमाते हैं। **'प्राहुस्तारणार्थं मनीषिणः' संसार से तिरने की इच्छा करनेवाले भव्य जीवों को...** संसार के तिरने की-टालने की इच्छावाले जीवों को धर्मरूपी जहाज का आश्रय अवश्य लेना चाहिए।

'अनुप्रेक्षा इमाः सद्भिः सर्वदा हृदये धृताः' लो! यह बारह भावना हृदय में हमेशा रखना। तब फिर हमारे धन्धा कब करना? ऐसा कहना पड़े या नहीं? भाई! धन्धा तो धन्धे के काल में बाह्य होता है। परन्तु तेरी चिन्ता से वहाँ धन्धा बढ़ जाए और चिन्ता कम हो, इसलिए पैसा घट जाए, ऐसा नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कैसे कहा? देखो! क्या कहते हैं?

गाथा ५८

अनुप्रेक्षा इमाः सद्भि सर्वदा हृदये धृताः।
कुर्वते तत्परं पुण्यं हेतुर्यत्स्वर्गमोक्षयोः।।५८।।

अर्थ : जो सज्जनपुरुष बारंबार इन बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हैं, वे उस पुण्य का उपार्जन करते हैं जो पुण्य स्वर्ग तथा मोक्ष का कारण है। इसलिए स्वर्ग-मोक्ष के कारणस्वरूप पुण्य को चाहनेवाले भव्य जीवों को सदा इन बारह भावनाओं का चिन्तवन करना चाहिए॥५८॥

गाथा - ५८ पर प्रवचन

अनुप्रेक्षा इमाः सद्भि सर्वदा हृदये धृताः।
कुर्वते तत्परं पुण्यं हेतुर्यत्स्वर्गमोक्षयोः।।५८।।

जो सज्जन पुरुष बारम्बार बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हैं। यह बारह भावना कही। ५८ गाथा। **उस पुण्य का उपार्जन करते हैं।** उस पुण्य से स्वर्ग (प्राप्त

करते हैं)। ... है न। **और परम्परा मोक्ष का कारण...** तत्पश्चात् राग टालकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे, इसलिए परम्परा मोक्ष का कारण है। **इसलिए सर्व मोक्ष के कारण स्वरूप पुण्य को चाहनेवाले भव्य जीव सदा...** सर्वदा सदा **यह भावना...** भाना चाहिए। आचार्य को खबर नहीं होगी कि वापस हमारे स्त्री-पुत्र हों, उनका कब करना? सर्वदा भावना में बैठे रहना एक ओर? उनका तेरा किया होता नहीं। होनेवाला होगा, वह होगा। वापस किसका लगा है? व्यापार-धन्धा आदि मिलने का हो, वह मिलेगा और लड़के तथा स्त्रियाँ निभनी होंगी, वे निभेंगी। तेरी चिन्ता के कारण वहाँ फेरफार हो, ऐसा है नहीं। यह तो पहले एकत्व और अनित्य में कह दिया कि अन्य है। अन्य को और तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। कहो, समझ में आया?

अब मुनि का धर्म भी इसे थोड़ा पालन करना चाहिए, ऐसा साथ ही कहते हैं।

गाथा ५९

आद्योत्तमक्षमा यत्र यो धर्मो दशभेदभाक्।
श्रावकैरापि सेव्योऽसौ यथाशक्ति यथागमम्।।५९।।

अर्थ : उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य, तथा ब्रह्मचर्य, इस प्रकार इन दश धर्मों का भी श्रावकों को शक्ति के अनुसार तथा शास्त्र के अनुसार पालन अवश्य करना चाहिए॥५९॥

गाथा - ५९ पर प्रवचन

आद्योत्तमक्षमा यत्र यो धर्मो दशभेदभाक्।
श्रावकैरापि सेव्योऽसौ यथाशक्ति यथागमम्।।५९।।

देखो! आगम आया। क्या कहते हैं? गृहस्थाश्रम में श्रावक को भी उत्तम क्षमा, मार्दव, सरलता, निर्मानपना, सरलपना, सत्य... ५९ गाथा है। संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य लो, यह दस प्रकार के धर्म परसों से शुरु होंगे। यह आज नाम में आ गये।

इस प्रकार दस धर्मों का भी श्रावकों की शक्ति अनुसार और शास्त्र के अनुसार... आगम है न। **पालन जरूर करना चाहिए।** गृहस्थाश्रम में रहे हुए श्रावक को भी दस प्रकार का धर्म यथाशक्ति से उसे आदर करना और पालना चाहिए। ऐसा नहीं मान लेना कि इस प्रकार का धर्म तो मुनि को है, हमारे क्या? ऐसा कहते हैं। यथाशक्ति क्षमा, निर्मानता, सरलता, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य रखना चाहिए। शास्त्र की आज्ञा श्रावक को जितने प्रमाण में रखा जाए, उतनी भावना उसे करनी चाहिए।

यह श्लोक आ गया है।

गाथा ६०

अन्तस्तत्त्वं विशुद्धात्मा बहिस्तत्त्वं दयाङ्गिषु।
द्वयोः सन्मीलने मोक्षस्तस्माद् द्वितयमाश्रयेत्।।६०।।

अर्थ : चिदानन्द चैतन्यस्वरूप आत्मा को अन्तस्तत्व (भीतरी तत्त्व) है तथा समस्त प्राणियों में जो दया है, वह बाह्यतत्त्व है और इन दोनों तत्त्वों के मिलने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को इन दोनों तत्त्वों का भलीभाँति आश्रय करना चाहिए॥६०॥

गाथा - ६० पर प्रवचन

अन्तस्तत्त्वं विशुद्धात्मा बहिस्तत्त्वं दयाङ्गिषु।
द्वयोः सन्मीलने मोक्षस्तस्माद् द्वितयमाश्रयेत्।।६०।।

यह आ गया—निश्चय और व्यवहार। पहले कह गये हैं बीच में। अन्तःतत्त्व का आश्रय करना, वह निश्चय है और दया आदि अहिंसा के भाव करना, वह शुभभाव या व्यवहार है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन और ज्ञान सहित ऐसे शुभभाव होते हैं। इसलिए दोनों से मुक्ति होती है, उसका आश्रय करना, ऐसा व्यवहार से कहा गया है।

अब **ज्ञानी अपने आत्मा की इस प्रकार भावना करता है।** देखो! सार में सार।

गाथा ६१

कर्मभ्यः कर्मकार्येभ्यः पृथग्भूतं चिदात्मकम्।
आत्मानं भावयेन्नित्यं नित्यानन्दपदप्रदम्।।६१।।

अर्थ : कर्मों से तथा कर्मों के कार्यों से सर्वथा भिन्न, और चिदानन्दचैतन्य स्वरूप तथा अविनाशी, और आनन्द स्वरूप स्थान को देनेवाले आत्मा का ज्ञानी को सदा चिन्तवन करना चाहिए॥६१॥

गाथा - ६१ पर प्रवचन

कर्मभ्यः कर्मकार्येभ्यः पृथग्भूतं चिदात्मकम्।
आत्मानं भावयेन्नित्यं नित्यानन्दपदप्रदम्।।६१।।

श्रावक को गृहस्थाश्रम में कैसा आत्मा भाना? **कर्मों से और कर्मों के कार्य सर्वथा भिन्न है।** लो! बारह भावना की, यह भी एक भावना है। सदा कर्म से भिन्न आत्मा और **'कर्मकार्येभ्यः'** यह विकार परिणाम होते हैं, वह वास्तव में आत्मा का कार्य—स्वभाव नहीं है। यह पुण्य और पाप, वह कर्म का कार्य है। धर्मचन्दजी! किस अपेक्षा से है यह? सवेरे दूसरा लिया जाता है। यह तो पर्याय में तेरा दोष है, कर्म का नहीं। यहाँ अब आत्मा स्वभाव शुद्ध चिदानन्द आत्मा की दृष्टि होने पर (भी) निर्बलता के कारण जितना विकार होता है, वह मेरे स्वभाव का कार्य नहीं है, ऐसा गिनकर कर्म का कार्य है—ऐसा कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? लो, यहाँ **'कर्मकार्येभ्यः'** (कहा है)। वह कर्म का कार्य है। कहो, समझ में आया?

राग, द्वेष, शरीर, संयोग आदि सब कर्म के (कार्य हैं), मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। मैं तो आत्मा अखण्डानन्द ज्ञायक हूँ। ऐसा **'पृथग्भूतं चिदात्मकम्'** उससे चिदानन्द आत्मा अत्यन्त भिन्न है। कैसा है? **'नित्य' अविनाशी और आनन्दस्वरूप स्थान को देनेवाला। 'नित्यानन्दपदप्रदम्'** नित्य आनन्दरूपी मुक्ति के पद को देनेवाला यह आत्मा है। वह पद कहीं विकल्प और निमित्त से तथा शरीर से प्राप्त नहीं होता। समझ

में आया? **'आत्मानं भावयेन्नित्यं'** ऐसे आत्मा को नित्य हमेशा बारम्बार भावना करना। कहो, बराबर होगा यह? दान अधिकार आया, षट्कर्म का आया, बारह भावना का आया और अन्त में यह भावना कही। भाई! तेरा स्वरूप तो कर्म और कर्म के फल राग से भिन्न है, हों! यह गति और लेश्या सबसे भिन्न है। ऐसी आत्मा की बारम्बार इसे भावना करना चाहिए।

अन्तिम श्लोक।

गाथा ६२

इत्युपासकसंस्कारः कृतः श्रीपद्गनन्दिना।
येषामेतद्नुष्ठानं तेषां धर्मो ऽतिनिर्मलः।।६२।।

अर्थ : इस प्रकार श्री पद्मनन्दि आचार्य ने इस उपासक संस्कार की (श्रावकाचार की) रचना की है। जिन पुरुषों की प्रवृत्ति इस श्रावकाचार के अनुसार है, उन्हीं को निर्मल धर्म की प्राप्ति होती है॥६२॥

गाथा - ६२ पर प्रवचन

इत्युपासकसंस्कारः कृतः श्रीपद्गनन्दिना।
येषामेतद्नुष्ठानं तेषां धर्मो ऽतिनिर्मलः।।६२।।

पद्मनन्दी आचार्य ने इस उपासक संस्कार की रचना की है। श्रावकाचार। इस श्रावकाचार की रचना ६२ श्लोक हुए। ७ व्याख्यान हुए, ७ पूरे। **जिन पुरुषों की प्रवृत्ति श्रावकाचार के अनुसार है, उनको निर्मल धर्म की प्राप्ति होती है।** इस प्रकार से श्रद्धा-ज्ञानादि प्राप्त करे, उसे निर्मल धर्म की प्राप्ति होने पर एकावतारी आदि होकर मोक्ष में जाने की तैयारी करे। इसलिए गृहस्थाश्रम में श्रावक को यह भावना और यह श्रावकाचार बारम्बार पालना चाहिए।